शोध मंथन Vol. XVI No.I Jan.- Mar. 2025 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.877 (SJIF)

श्रद्धानन्दचरित महाकाव्य में राष्ट्रीयता की भावना

प्राप्तिः 25.02.2025
स्वीकृतः 24.03.2025

20

राजकुमार
शोधछात्र, (संस्कृत विभाग)
कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनिताल, उत्तराखण्ड।
ईमेलः rajkumar827397@gmail.com

संस्कृत वाङ्मय में महाकाव्य परम्परा नवजागरण के मङ्गल प्रभात में ऐतिहासिक महाकाव्य की प्रतिभा–किरण का प्रकाश विश्व साहित्याकाश को उत्तरोत्तर आलोकित कर रहा है संस्कृत देववाणी का साहित्य विश्व की अन्य भाषाओं के साहित्य की अपेक्षा अतिविस्तृत एवं अन्यतम् है। इसके साहित्यिक इतिहास का विकास वैदिक और लौकिक संस्कृत में निहित है।

संस्कृत शब्द का प्रयोग उस भाषा के लिए किया है जो लगभग चार हजार वर्षों से अनवरत भारतवर्ष में प्रचलित रही है तथा जिससे इस देश की बहुसंख्यक भाषाओं का विकास हुआ एवं भारत की अनेक भाषाओं में इससे पर्याप्त सामग्री प्राप्त की है। जिसके कारण संस्कृत वाङ्मय का वर्चस्व सम्पूज देश की भाषाओं पर देखा जाता है। इस भाषा ने अपनी साहित्यिक सम्पत्ति तथा भाषागत अवदान के कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष को युगों तक सांस्कृतिक एकता एवं राष्ट्रीय एकता में पिरोए रखा है। इसे नष्ट करने की तथा इससे दूर भागने की जाना चेष्टाएं भारतीय इतिहास में प्राप्त होती हैं किन्तु इसकी स्वाभाविक जीवनी शक्ति ने इसे कभी क्षीण नहीं होने दिया। संस्कृत भाषा की इस जीवनी शक्ति के कारण ही इसे देवभाषा, अमर भारती, गीर्वाणवाणी इत्यादि प्रशस्तियों से विभूषित किया गया तथा संस्कृत को देवभाषा के रूप में महर्षियों द्वारा स्वीकृत किया है जो निम्न उक्ति द्वारा स्पष्ट होता है–

"संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्शिभिः।"1

संस्कृत भारत की ही नहीं अपितु विश्व की प्राचीनतम भाषा है। इसकी साहित्य परम्परा भी सर्वाधिक प्राचीन है। यही कारण है कि संस्कृत काव्य साहित्य इस देश की राष्ट्रीय संस्कृति का प्रधान वाहन रहा है। संस्कृत के काव्य–महाकाव्य भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीयता की क्रीडा स्थली है तथा संस्कृत साहित्य की सकल विधाएं राष्ट्रीय संस्कृति की अनुपम एवं मनोरम झाँकी प्रस्तुत करती हैं। आध्यात्मिक भावना एवं राष्ट्रीय भावना इस देश की संस्कृति का प्राण है तथा त्याग की उदात्त भावना से प्रेरित, तपस्या से पवित्र एवं तपोवन में पोषित भारतीय संस्कृति का अनुपम सौन्दर्य संस्कृत साहित्य में अपनी आभा – प्रभा विखेरता हुआ सहदयों के हृदय को बुलात अपनी ओर आकृष्ट करता है। प्राचीन आचार्यों ने भाव–विवेचन के अन्तर्गत राष्ट्रीयता जैसे किसी भाव का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु विगत इतिहास से सिद्ध है कि राष्ट्रीयता भी एक प्रबल भाव है। अपने ही स्वर्णिम देश में हमने अनेक युवकों अथवा राष्ट्रभक्तों एवं महापुरुषों को राष्ट्रीयता की पवित्र बलिवेदी पर सर्वस्व समर्पित करने वालों का अध्ययन किया है। जैसे स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद तथा महात्मा

मुंशीराम आदि है। ऐसे ही श्रेष्ठ महापुरुषों में एवं राष्ट्रभक्तों में हमारे आधुनिक महाकाव्य 'श्रद्धानन्दचरितम्' के श्रेष्ठ नायक स्वामी श्रद्वानन्द भी हैं जिन्हे वारे में कवि कहा है–

स दर्शनाक्षिग्रह शून्यंवत्सरे दिनोदये मासि दिसम्बर बरे।
तपस्विनं वैदिकमार्गदर्शिनं जघान हा भारतराष्ट्रगौरवम्।। 2

राष्ट्रभक्ति की प्रबलता तो इसी से सिद्ध है कि कई बार राष्ट्रीयता की प्रेरणा के सम्मुख अन्य स्थायीभाव – वात्सल्य, रति, शोक आदि न्यून पड़ जाते हैं। स्वातन्त्र्य आन्दोलन में भाग लेने वाले व्यक्तियों का अपने दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन को ठुकराकर राष्ट्रीयता की अग्नि में कूद पड़ना यही सिद्ध करता है कि राष्ट्रीयता का भाव सभी अन्य प्रमुख भावों से उठ जाने की भी क्षमता से युक्त है। भारतीय आचार्यों ने रस सिद्धान्त के अन्तर्गत भावों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन करते हुए उन्हें मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया है– स्थायीभाव और सञ्चारी भाव । स्थायीभावे के अन्तर्गत नौ, या ग्यारह भावों की चर्चा की गयी है। इनमें 'राष्ट्रीयता' नाम नहीं आता है। इसके दो कारण हैं– एक तो हमार आचार्यों ने स्थायीभाव के अन्तर्गत चिरन्तन भावनाओं का उल्लेख किया है; जिनका मानव हृदय की मूल प्रवृत्तियों से असीम सम्बन्ध है। 'राष्ट्रीयता' सर्वकालीन एवं सार्वलौकिक भाव नहीं है; अतः इसका उल्लेख न होना स्वाभाविक ही था। दूसरे हमारी प्राचीन संस्कृति में राष्ट्रीय एकता की भावना आधुनिक राष्ट्रीयता के रूप में प्रायः अविकसित रही; अतः इसकी कल्पना करना सम्भव नहीं था। राष्ट्रीयता भौगोलिक एवं राजनीतिक सीमाओं पर अवलम्बित तथा विश्वबन्धुत्व की व्यापक भावना से संकीर्ण होती है, जबकि भारतीय संस्कृति में मानव समूहों को धर्म, जाति, समाज और मानवीय गुणों की इष्टि से ही देखा जा रहा है। राष्ट्रीयता की भावना का विकास गयः छोटे–छोटे राज्यों में अधिक शीघ्रता से होता है जिनमें धर्म, संस्कृति एवं भाषा की एकता हो। ऐसी ही अनुपम भावना की श्री राधेश्याम गंगवार द्वारा विरचित ''श्रद्धानन्दचरित'' में देखने को मिलती है जिसका वर्णन निम्नवत् किया जा सकता है–

न्यायालये संगत एष नित्यं गतागतं सावहितो व्यधत्त ।
सुहस्तमुद्यम्य विशेषभक्त्या संरक्षकाणामभिवादनं च ।।

उक्त पद्म में कवि ने महाकाव्य के नायक महात्मा मुंशीराम अर्थात् स्वामी श्रद्धानन्द जी के पिता की कर्तव्यनिष्ठा का सुन्दर वर्णन किया है कि नानक बरेली नगर से पदोन्नति पाकर प्रसन्नतापूर्वक बदायूं नगर को आये जहाँ बालयोगी की तरह मुंशीराम सर्वत्र स्वतन्त्र घूमते रहे। किन्तु यहाँ पर पिता जी के साथ जाकर सावधान होकर यह कचहरी में गृत लगाते हुए बड़ी निष्ठा एवं लगन से सुन्दर हाथ उठाकर सैनिक अभिवादन करते थे। मुंशीराम ने एक दिन किसी दस्यु की कथा माँ के द्वारा सुनी जिससे उनके हृदय में अपार राष्ट्रीय भावना एवं देशभक्ति की भावना का बीजारोपण हो गया था। इस बीज के अंकुरण का श्रेय पण्डित सभा में प्रतिष्ठित, पुराण, वेद तथा स्मृतिशास्त्र के प्रखर विद्वान्, शुद्धचैतन्य, विभूतिपाद के पवित्र दर्शन का मुख्य कारण है। जिसका वर्णन निम्न पद्य से प्रस्तुत है–

विशुद्धचैतन्य विभूतिपादं प्रतिष्ठितं पण्डितमण्डलीषु।
पुराणवेदस्मृतिलब्धवर्णं व्यपश्यदाश्चर्यकुशेशयाक्षः।। 4
न्यबोधयत्तं प्रभवः परस्तादासीद् दयानन्दविभूतिपादः।
ख्यातोऽवधूतो विदथः श्रुतीनां निदेशकः सर्वविदां समाजे।। 5

मुंशीराम को घर लौटते कुछ देर हो गयी जिससे माँ ने कुछ चिन्ता व्यक्त की और कहा कि वह कहीं उस जादूगर के जाल में न फस जाये, लेकिन ऐसा नहीं था। बाद में पिता जी ने उन्हें बताया कि वे विभूतिपाद वेदों के उपदेशक महर्षि दयानन्द थे। जो सांसारिक विषय वासनाओं से विरक्त होकर विद्वानों के मध्य प्रसिद्ध हुए। परन्तु विवेक और ममता की मूर्ति उस माता को क्या ज्ञात था कि समय के साथ उनका पुत्र उनी परम विद्वान जादूगर के अमृत वचनों से प्रभावित होकर उसका परमप्रिय शुभग्राह सम्पन्न अनुयायी वन कर राष्ट्रभक्त के रूप में देश सेवा करने लगेगा। श्रद्धानन्दचरित से निम्न रूप में प्रस्तुत किया जाता है–

महाबलं बुद्धिमतां विशुद्धं तपस्विनामभ्युदयै कहेतुः।
परीक्षितं शक्तिमतां परास्त्रं सतामहिंसा परमो हि धर्मः।। 6

अर्थात् तपस्वियों की उन्नति का एकमात्र साधन अंहिसा बुद्धिमानों की पवित्र महाशक्ति है। 'अहिंसा' शक्तिशाली मनुष्यों का सर्वोत्तम अस्त्र एवं सज्जनों का परम धर्म है। ऐसी परम पवित्र भावना तो राष्ट्रभक्त के ही जीवन चरित्र में उद्घटित होती है तथा ये राष्ट्रीयता की महिमा से मण्डित श्रद्धानन्दचरितम् प्रतीत होता है। जैसा कि कविप्रवर डॉ० राधेश्याम गंगवार द्वारा पद्यमयी वाणी में प्रस्तुत है –

क्रियापवर्गे समुपेत्य नित्यं कृतज्ञतां व्याहरतीह कामम्।
कदाप्यहिंसापचिती च सत्यं न जन्मिनां बन्ध्यफलानि लोके।। 7

कवि ने महात्मा मुंशीराम के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना का सुन्दर वर्णन करते हुए कहा है कि मेरी उपासना की समाप्ति पर यह नित्य आकर कृतज्ञता व्यक्त करता है। क्योंकि लोक में बो प्राणियों पर अहिंसा, सेवाकर्म और सत्कर्म या सत्यता कभी व्यर्थ नहीं जाती है। ये सभी कर्म व्यक्ति को महान राष्ट्रभक्त एवं श्रेष्ठ महापुरुष बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं–

इतीरयित्वाऽपचितौ प्रवृत्तान् निवर्त्य सर्वानपि सार्वभौमः।
तुरङ्गमारुह्य पुरं प्रतस्थ विमाननां संसहते न मानी।। 8

राष्ट्र के प्रतिस्नेह रखने वाले चरित्रनायक मुंशीराम ने अंग्रेजों की गुलामी से खिन्न होकर सेवा में लगे हुये जमादार कर्मचारियों को लौटा कर चक्रवर्ती सम्राट की तरह अश्व पर सवार होकर नगर की ओर प्रस्थान किया। क्योंकि स्वाभिमानी जन तिरस्कार सहन नहीं कर सकते हैं–

राष्ट्रव्रती सौम्ययती हुतात्मा पुराणवेदस्मृति पारदृश्वा।
जहौ जनश्रेयस एव मोक्षानन्दं दयानन्दनिधिर्महर्षिः।। 9

अर्थात् देशभक्त, प्रिय तपस्वी, हुतात्मा, पुराण, वेद और धर्मशास्त्र में पारङ्गत, दया और आनन्द के भण्डार महर्षि दयानन्द ने जनहित अथवा लोक कल्याणार्थ में अपने मोक्ष सुख को त्याग दिया और राष्ट्र के कल्याण में अनेकानेक कार्य करते हुये अपने को आहूत कर दिया। ऐसे परम प्रिय योगी देवदयानन्द ने. बेसहारा, निर्धनों तपस्वियों, अस्पृश्यों आहतों, विधवाओं और जादू–टोने आदि के जाल में फसे लोगों में जिजीविषा अर्थात् जीवन जीने की लालसा को जाग्रत किया। विद्या का अर्जन करके मनुष्य वास्तव में सौम्य, समृद्ध, विनम्र और विद्वान् होते हैं। अतः देश से अविद्या का विनाश और विद्या की श्रीवृद्धि हेतु सदैव उन्नत पुरुषार्थ करना चाहिए। प्रज्ञा की मूर्ति, अतीम शक्ति सुसम्पन्न, स्वाधीनता आन्दोलन के सूत्रधार महर्षि देवदयानन्द ने देश में एकच्छत्र प्रजातन्त्र का सर्वप्रथम समर्थन

किया तथा इन्होंने एकनिष्ठ होकर ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा की; जिस प्रकार कोई श्रेष्ठ राजा प्राप्त राष्ट्र की रक्षा करता है। कवि ने राष्ट्रीयता की भावना को महर्षि देवदयानन्द के माध्यम से सुन्दर पद्यमयी वाणी में व्यक्त किया है जो निम्नवत् प्रस्तुत है–

प्रज्ञावतारामितवीर्यसारः स्वाधीनतान्दोलन सूत्रधारः।
एकातपत्रं विषये प्रजानामृशिः प्रभुत्वं प्रथमं दिदेश।। 10

महर्षि दयानन्द सरस्वती के परमपवित्र विचारों का आर्य समाज संस्था से जुड़कर, पथ प्रदर्शक युवा मुंशीराम पवित्र मन से सम्पूर्ण समाज अथवा राष्ट्र के विकास के लिए सतत् प्रयत्नशील रहने लगे। राष्ट्र की तिरस्कृत होती हुई सनातन विश्वव्यापी सभ्यता, वैदिक धर्म और संस्कृति तथा नीचे गिरते राष्ट्र सम्मान आदि दोषों को देखकर चरित्रनायक मुंशीराम चिन्तित हुए। क्योंकि अशिक्षित और ग्रामीण देशवासी वास्तविक सच नहीं समझते, न ही समाज में सामञ्जस्य स्थापित कर पाते हैं, न कभी राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य, स्वाभिमान और पदार्थ विद्या को न सह सकते हैं तथा न ही किसी विषय पर विचार पूर्वक कार्य कर सकते हैं। जैसा कि कविप्रवर डॉ० राधेश्याम गंगवार ने 'श्रद्धानन्दचरितम्' में व्यक्त किया है–

सनातनीं सार्वजनीनसभ्यतां तिरस्कृतां वैदिकधर्मसंस्कृतिम्।
अधः प्रपन्नं प्रियराष्ट्रगौरवं समीक्ष्य दोषान् विविधांश्चचिन्तितः।। 11

महात्मा मुंशीराम के श्रेष्ठ एवं पवित्र विचारों से प्रभावित होकर श्री अमन सिंह ने भारतीय परम्परा से अनुप्राणित पवित्र संस्कृति तथा प्राचीन राष्ट्र के गौरव की रक्षा करने के लिए देववाणी संस्कृत भाषा को उचित साधन माना। क्योंकि संस्कृत भाषा सब भाषाओं की जननी रूप में विश्व विख्यात है। यह सहृदय विद्वानों की समादृत वाणी है एवं देवभाषा के माध्यम से प्रतिक्षण समुचित रूप से आर्य संस्कृति की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। इस प्रकार राष्ट्राहित पर विचार करते हुये दानवीरों में श्रेष्ठ उदार एवं शान्तचित्त मुंशी अमनसिंह ने कांगड़ी ग्राम की भूमि गुरुकुल खोलने के लिए उसी प्रकार दान कर दी जिस प्रकार बलि ने वामन के लिये वसुधा प्रदान की थी। परोपकारी महात्मा मुंशीराम जी के संकल्प, साहस, सामर्थ्य, ज्ञान और तप के प्रभाव से उच्च शिक्षा का केन्द्र गुरुकुल कांगड़ी भारत राष्ट्रा का साक्षात् गौरव हो गया है। जैसा कवि द्वारा कहा गया है–

व्रतेन वीर्येण विद्यया तपः प्रभावेण परोपकारिणः।
अथोच्चशिक्षास्पदमच्छकांगड़ी बभूव मूर्तं ननु राष्ट्रगौरवम्।। 12

कर्मयोगी मुंशीराम के पवित्र कार्यों की दिन–प्रतिदिन उन्नति के शिबर पर देखने वाले इनके कुछ सहयोगी प्रायः विरोधी होने लगे। अतः विचारखान मुंशीराम ने गुरुकुल छोड़कर भावुक उहह्मवेत्ता आचार्यों को देखते–देखते राष्ट्र के कल्याण के लिए संन्यास का व्रत धारण कर लिया। कठिनतामय अवसर को समझने वाले, संन्यास ग्रहण कसे वाले मुंशीराम जी ने आत्म सन्तोष, दीनता प्रदर्शन या परिश्रम से पलायन करने के लिये नहीं अपितु राष्ट्र एवं समाज की सतत् सेवा करने की इच्छा से गुरुकुल छोड़ा था। स्वामी जी ने सभी कार्य जीवन में श्रद्धापूर्वक सम्पन्न किये और महात्मा मुंशीराम ने संन्यास ले लिया एवं स्वेच्छा से अपना नाम श्रानन्द रख कर गुरुकुल से अलग होकर समाज सेवा कसे लगे। कवि ने पद्यमयी सरस–सरल वाणी में प्रस्तुत किया है–

रक्षाव्रता भारतमातृभूमे आबालवृद्ध पुरुषाश्च नार्यः।
स्वतन्त्रतान्दो लनने तृमध्ये मूर्धन्यतां सर्वगतिर्जगाम।। 13

अर्थात् उस समय बच्चों से लेकर वृद्ध तक सभी स्त्री–पुरुष भारतमातृभूमि की रक्षा करने का संकल्प ले चुके थे और सर्वत्र पहुँच रखने वले महात्मा श्रद्धानन्द स्वाधीनता आन्दोलन के नेताओं में अग्रणी हो गये। इसके बाद पवित्र मति स्वामी जी ने देष को पराधीनता से मुक्त करने के लिए चलाये जा रहे महात्मा गांधी के आन्दोलन में स्थायी योगदान करने का विचार किया। गुरुकुल छोड़ने के पश्चात् वे देश को स्वतन्त्र कराने की इच्छा से भारत के सार्वभौम नायक जैसे दिल्ली जाकर निवास करने लगे और राष्ट्रहित में स्वतन्त्र वैदिक साप्ताहिक पत्र 'सद्धर्म' का प्रकाशन करने के लिए प्रेस की स्थापना की इसके पश्चात् इन्होंने दिल्ली के प्रसिद्ध चौदनी चौक पर राष्ट्र शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए जुलूस का नेतृत्व किया –

धर्मार्थविद् वैदिकधर्म पत्रप्रकाशनार्थं प्रतिबद्ध चेताः।
अस्थापयद् देशहितं स्वतन्त्रं सद्धर्ममुद्रालयमार्यनेता।। 14
सचांदनीचौक इतिप्रसिद्धे चतुष्पथे चारुतरप्रदेशे।
स्वराष्ट्रशक्ति प्रतिपत्ति हेतोश्चकार चान्दोलननायकत्वम्।। 15

इस जुलूस में आमन्त्रित दिल्ली आर्यसमाज के सभासद, लब्धप्रतिष्ठित महाजन, राष्ट्ररक्षा का संकल्प लेने वाले, शास्त्रों और शस्त्रों में समान रूप से दक्ष भारतीय वीर शामिल हुए। सौभाग्यशाली राष्ट्रभक्तों में अग्रणी स्वामी श्रद्धानन्द तो प्रताप से तपते सूर्य के समान हो गये। तपने पर तो लोहा भी लाल हो जाता है; फिर शरीरधारियों की तो बात ही क्या है। तब वे अपने चित्त को वश में रखने वाले स्वराज्यप्राप्ति के लिए सत्याग्रही समूह के नेता, मानवीय कर्तव्य की प्रतिमूर्ति, क्रान्तिकारी, शत्रु को बलातउखाड़ फेंकने वाले विशाल मुखमण्डल, आयतनेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल तथा जन जागृति में दक्ष स्वामी जी शरीरधारी वीर रस के समान उसके सामने आ गये और बोले कि ''मैं राष्ट्रभक्त वैदिक धर्मनिष्ठ, महर्षि दयानन्द का प्रियशिष्य हूँ''; यदि राष्ट्रभक्ति भी अनुचित है, तो मुझ कृतघ्न ने यह अपराध किया है और मैं निहत्था सामने खड़ा हूँ चलाइए मेरे सीने पर गोली–

असाम्प्रतं यद्यपि राष्ट्रभक्तिस्तदापराधं कृतवान् कृतघ्नः।
अवस्थितो हन्त विमुक्तबाहुर्विधेहि मे वक्षसि गोलवृष्टिम्।। 16

सम्पूर्ण राष्ट्र में सुख–शान्ति की प्रगति के लिए सभी भारतीय मत सम्प्रदाय के लोग परस्पर ईर्षया का परित्याग करके प्रेम की उच्चभावना से सम्पृक्त हो और उदारचरित लोग मिलकर समान आचार संहिता का निर्माण एवं निर्देश करें। सभी विद्वान् और देशभक्त प्रतिबद्ध होकर समाजवाद अथवा राष्ट्र की उन्नति के लिए मिलकर प्रयास करें। राष्ट्रीयता का अर्थ देश प्रेम से लिया गया है क्योंकि अपने देश की दुर्दशा को देखकर भी राष्ट्रीयता का सञ्चार होता है। इसी प्रकार के संचार का वर्णन कवि ने चरित्रनायक स्वामी श्रद्धानन्द्र में दिखाया है–

अनीति संघर्षपराः परेषां दुरेषणा दुव्यसनेष्वसक्ताः।
देशाय दिव्या बलिदानभावा धन्याः नराः कर्म परोपकाराः।। 17

अर्थात् जो दूसरों के लिए अनीति से सतत् संघर्ष करते हैं, दुर्वचनों एवं दुव्यसनों से दूर रहते हैं। जिनमें देश के लिए अथवा राष्ट्र के लिए बलिरान की दिव्य भावना हो ऐसे परोपकार परायण देशभक्त धन्य होते हैं। सत्य के मार्ग पर चलते हुए राष्ट्रभक्त स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपना सार्वजनिक

जीवन दानकर दिया अर्थात वे राष्ट्र के लिये शहीद हो गये। राष्ट्रीयता के मूल में आत्मगौरव एवं जाति की रक्षा के उत्साह का भाव रहता है।

अतः इसी भाव की महिमा से मण्डित 'श्रद्धनन्दचरितमहाकाव्यम्' प्राप्त है किन्तु इसमें राष्ट्रीयता का व्यापक भाव सर्वत्र उपलब्ध होता हुआ भी एक ओर भारत के अतीत के गौरव का स्मरण करता है और दूसरी ओर अपने देशवासियों को जागृति का पावन सन्देश देता है। जबकि अब हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र हो गया है तो राष्ट्रीयता की भावना का मन्द पड़ जाना स्वाभाविक है किन्तु फिर भी हमारे महाकवियों ने जनमानस में राष्ट्रीयता की भावनाओं का स्फुरण करके उन्हें नव–निर्माण की ओर अग्रसर रहने का अमिट सन्देश दिया है। अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि ''श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्य'' राष्ट्रीयता की अनुपम भावना से परिपूर्ण है जिसको स्पष्ट रूप से आधुनिक महाकवि ने स्वयं ही स्वीकार करते हुए प्रस्तुत किया है–

"श्रद्धानन्दं चरितमकरोद्राष्ट्र भक्तिप्रधानम्"

सन्दर्भ

1. काव्यादर्श – 1.33
2. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 24–37
3. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 2019
4. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 3.50
5. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम – 3.52
6. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 15.46
7. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 15.47
8. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 18.17
9. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 20.10
10. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 20.12
11. श्रमानन्दचरितमहाकाव्यम् – 21.7
12. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 21.42
13. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 21.52
14. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 22.17
15. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 22.18
16. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 22.35
17. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 19.48
18. श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यम् – 24.41